विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१

पोस्टल रजि. नं. (M) NS (C) 36

वर्ष ११ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२५ • चैत्र पूर्णिमा [शक] • दि. ८-४-१९८२ • अंक १०

प्रवचन-प्रवाह

चौथा दिन

साधनाका चौथा दिन पूरा हुआ। चौथा दिन बड़े महत्वका दिन है। तीन दिनसे इसीके लिए परिश्रम कर रहे थे। अनेक साधकोंने आज पहली बार अपने भीतर सत्यकी धर्म-गंगामें डुबकी लगायी।

जबसे जन्म लिया, आँखें खोलीं, बाहर-बाहर ही देखा। बहिर्मुखी, बहिर्मुखी, सारे जीवन बहिर्मुखी ही रहा। कहीं धर्मके नाम पर कोई काम किया भी तो बाहर-बाहरका ही—बाहरी वेश-भूषा, बाहरी बनाव-शृंगार, बाहरी दिखावा, बाहरी आडम्बर। थोड़ा और आगे बढ़ा तो बाहरी-बाहरी कर्मकांड। इन्हींमें सारा जीवन बिता दिया। यदि कोई कुछ और आगे बढ़ा तो अध्यात्मके नाम पर बुद्धिविलास करने लगा। केवल दार्शनिक ऊहापोह, दार्शनिक वाद-विवाद। आध्यात्मका अर्थ ही नहीं समझा, धर्मका अर्थ ही नहीं समझा। अध्यात्म कहते हैं अपने भीतरकी सच्चाइयोंको स्वानुभूति द्वारा जानने को। धर्म कहते हैं धारण करनेको। पर न कभी भीतर देखकर सच्चाईका अनुभव किया, न उसे धारण किया। सत्यके अनुसंधानका कार्य ही नहीं किया, खोजका कार्य ही नहीं किया। भीतर जो अमृत भरा है, उस तक पहुँचा ही नहीं, उसे चखा ही नहीं।

आज जो कदम उठाया है वह नन्हासा कदम है इस लम्बी यात्राका, जिस पर हम चलना चाहते हैं। अन्तर्मुखी होनेका पहला कदम है, इसलिए बड़े महत्वका है। अन्तर्मुखी दो प्रकारसे हो सकते हैं—एक तो आँखें बन्द करके बैठ गए और लगे किसी कल्पनाका ध्यान करने। कल्पना ही कल्पना। कल्पना बड़ी प्रिय लगती है, बड़ी सुखद, पर सच्चाई से कोसों दूर। दूसरे अन्तर्मुखी होते हैं कल्पनासे मुक्त, सत्य-दर्शनके लिए। हमें यही करना है।

भारतवर्ष बड़ा पुराना देश है। इस देशमें साधनाकी अनेक विधियाँ उत्पन्न हुईं, पनपीं, बिगड़ीं, नष्ट हुईं, लुप्त हुईं। वह एक अलग विधि है। भारतकी लुप्त हुई पुरातन साधना-विधि। इसे समझें। किसी पूर्वाग्रहसे, पूर्व बुद्धि-लेपसे शंकामें न उलझें।

धम्म वाणी

अनवट्ठित चित्तस्स सद्धम्मं अविजानतो।
परिप्लव पसादस्स पञ्ञा न परिपूरति॥

धम्मपद ३/६

जिसके चित्तमें स्थिरता नहीं है, वह सद्धर्म को नहीं जान सकता। जो सद्धर्म को नहीं जान सकता उसके भीतर शांतिका अभाव है। जिसके भीतर शांतिका अभाव है उसकी प्रज्ञा पूरी नहीं हो सकती।

आज हम समझेंगे कि इस साधना का यह पहला कदम क्या है? कैसा है? नए नए साधकोंके समक्ष कई प्रश्न आते हैं। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो समान रूपसे सभी नए साधकों के समक्ष आते हैं। पहले उनका समाधान कर लें।

एक प्रश्न यह उठता है कि सिरसे पैर तककी यह यात्रा किसी एक क्रमसे ही क्यों करें? आवश्यक नहीं जो क्रम हमने बतलाया है उसी क्रमसे करें। किसी क्रमसे करें लेकिन क्रमसे अवश्य करें ताकि शरीरका कोई अंग छूट न जाय। इस शरीर-स्कन्धके बारेमें हम सत्यकी खोज कर रहे हैं। इस खोजमें किसी अंगको अछूता नहीं रखना है। किसी अंगको मूर्छित नहीं छोड़ना है।

एक प्रश्न यह उठता है कि जो सिरसे पांव तककी यात्रा है यह ऊपरी स्तर पर ही करें या भीतर भी? आगे जाकर तो यह यात्रा भीतर तक करनी ही है। फिलहाल ऊपरी-ऊपरी स्तर पर संवेदनाको देखें। जब सारे शरीरमें संवेदना महसूस होने लगे तो भीतर तक देखना आसान हो जायेगा। यदि किसीको अभी भीतर तक महसूस होने लगा तो बहुत ठीक। अन्यथा इसके लिए आतुर न हों।

एक प्रश्न यह उठता है कि यह जो सिरसे पांव तक चक्कर लगाते हैं उसमें कितना समय लगना चाहिए? उसके लिए कोई समय निर्धारित नहीं है। निर्भर करता है साधककी मनोस्थिति पर। कभी-कभी मन दुर्बल होता है, चंचल होता है तो बड़ा स्थूल होता है। जहाँ पहुँचे वहाँ कुछ महसूस ही नहीं हुआ तो एक-दो मिनट रुककर आगे

चलता है। इस तरह रुकते-रुकते यात्रामें आधा घंटा भी लग जाय, एक घंटा भी लग जाय। हमें अपना काम करना है। जो समय लगता है लगे। जब मन सजग है, स्थिर है तो जहाँ पहुँचा वहीं कुछ महसूस हुआ और तुरंत आगे बढ़ा तो समय कम लगेगा। लेकिन अब जबकि काम शुरू ही किया है तो एक पूरी यात्रामें कमसे कम दस मिनट तो लगने ही चाहिए। ताकि कोई अंग छूटने न पाए। जहाँ कहीं कुछ महसूस न हो और उस स्थान पर एक-दो मिनटके लिए रुकें तो बड़े धीरजके साथ निरीक्षण करें। यदि संवेदना नहीं मालूम हो तो व्याकुल न हों। संवेदना उत्पन्न करनेका व्यर्थ प्रयत्न नहीं करना है। कोई कृत्रिम संवेदना नहीं लानी है। जैसी स्थिति है उसे साक्षीभावसे देखना है। हमारे शरीरके प्रत्येक अंगमें कुछ न कुछ हो ही रहा है। शांत चित्तसे उसे देखना है। धीरे-धीरे स्थूल मन सूक्ष्म होने लगेगा और सूक्ष्म मन संवेदनशील होने लगेगा।

हमें अपने शरीरके अंग-प्रत्यंगमें जो कुछ स्वभावसे हो रहा है, उसे देखना है। यदि मौसमके कारण शरीर पर प्रभाव पड़ रहा है तो उसे देखेंगे। शरीर पर गर्मी है तो गर्मीको देखेंगे, पसीना है तो पसीनेको, भारीपन है तो भारीपनको। कहीं कोई रोग या बीमारीके कारण दर्द है तो दर्दको देखेंगे। अब तक भोक्ता होकर भोगते आए हैं। अब उसे साक्षीभावसे, तटस्थभावसे देखेंगे। न अच्छा मानेंगे, न बुरा मानेंगे। जिस स्थान पर जैसे संवेदना हो रही है उसे जानना है। बस केवल जानना है। प्रतिक्रिया नहीं करनी है। कदम-कदम सच्चाईके सहारे, तथ्यके सहारे चलेंगे। प्रारंभमें बड़े स्थूल तथ्य ही सामने आते हैं- ये प्रकट सत्य हैं, भासमान सत्य हैं। किसी अंगमें बड़े जोरकी पीड़ा महसूस हो रही है। यह घनीभूत पीड़ा इस क्षणकी सच्चाई है। शरीरका अमुक भाग ठोस है, यह इस क्षणकी प्रकट सत्य है, भासमान सत्य है। उसे साक्षीभावसे देखेंगे। उसके टुकड़े होने लगेंगे, विघटन-विश्लेषण होने लगेगा। सघनता टूटेगी। अंततः यह प्रतीत होगा कि यह पीड़ा, यह सघनता केवल तरंगे ही तरंगे हैं। इस तरह प्रकट भासमान सत्यसे हम परमार्थ सत्यकी ओर बढ़ेंगे। घनीभूत सत्यका बिना विघटन-विश्लेषण किए, बिना टुकड़े-टुकड़े किए हम परम सत्य तक नहीं पहुँच पायेंगे। यदि हमें सूर्यका दर्शन करना है तो जब तक घने-घने बादल छाये रहें सूर्यका दर्शन नहीं कर सकेंगे। जैसे ही घने बादल बिखर जायेंगे सूर्य-दर्शनका प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। अपने आप हो जायेगा। जब तक चित्त पर रागके, द्वेषके, मोहके घने-घने बादल छाए रहेंगे, परम सत्यका साक्षात्कार नहीं हो सकेगा।

इस समय ठोस सत्य हमारे सामने आया है उसे स्वीकार कर साक्षीभावसे देखना है। कुदरतके कानून को देखना है। कुदरतका कानून, प्रकृतिका नियम सर्वव्यापी है, सब पर लागू होता है। सजीव निर्जीव, अणु-अणु पर लागू होता है। जिस समय इसका साक्षात्कार हो जाता है, मनुष्य अपने आप इस कानूनके अनुसार ढल जाता है। यह साधना इसीलिए कर रहे हैं कि हम अपनी अनुभूतियोंके स्तर पर प्रकृतिके इस विधानको समझें, परम सत्यको जानें और उसके अनुसार अपने जीवनको ढालें। यही धर्म है।

सारे संसारमें प्रतिक्षण कुछ बदल रहा है, कोई घटना घट रही है। कोई बीज धरतीमें बोया गया तो वह फूट रहा है, अंकुरित हो रहा है। एक नन्हासा पेड़ फूट रहा है, उसमेंसे कोई डाल निकल रही है, शाखा निकल रही है, टहनी निकल रही है, पत्ता निकल रहा है, विकसित हो रहा है, फूल निकल रहा है, फल निकल रहा है, विकसित हो रहा है। पेड़ बढ़ रहा है। यह सच्चाई है। कि कुछ न कुछ बने ही जा रहा है। इसलिए इस संसारको भव संसार कहा गया -- भव, भव, भव। वैसे व्यवहारजगतमें कहना पड़ता है कि अमुक प्राणी है, जीव है, भूत है लेकिन वास्तवमें ऐसा कुछ है ही नहीं। केवल भव है, भव है। ऐसा कुछ भी नहीं है जो बन बनाके तैयार हो गया हो और उसमें अब कोई परिवर्तन नहीं होगा। सब कुछ बदल ही रहा है। यह सच्चाई जब अनुभूतिके स्तर पर जानेंगे तब वास्तवमें एक महत्वपूर्ण सत्यका दर्शन होगा।

साधनाके अभ्यासमें एक और सच्चाई सामने आती है कि जो बदल रहा है वह अकस्मात, अकारण नहीं बदल रहा। उसके पीछे एक या अनेक कारण हैं। बिना कारणके कुछ होता ही नहीं। किसी कारणसे ही कोई कार्य संपन्न होता है जो अगले कार्यका कारण बन जाता है। यह कार्य-कारण, कारण-कार्य की श्रृंखला अनवरत गतिसे चलती रहती है। ज्यों-ज्यों गहराइयोंमें उतरते जायेंगे एक और सच्चाई स्पष्ट होने लगेगी। जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य संपन्न होता है। प्रकृतिका नियम है जैसा बीज, वैसा फल। यदि कड़वा नीम बोयेंगे तो कड़वा फल ही आयेगा। मीठा आम बोयेंगे तो मीठा फल ही आयेगा। यह प्रकृतिका अटूट नियम है। इसके विपरीत हो ही नहीं सकता।

जैसा बीज वैसा ही फल आनेवाला है तो अपने कर्म-बीजोंके प्रति सजग रहना होगा। समझें कि कर्म क्या हैं? किसे कर्म-बीज कहें? कर्म तो शरीर, वाणी और मन से भी होता है। कौन से कर्मको महत्व दें? सामान्यतया लोग शरीरके कर्मको ही प्रमुख मानते हैं, वाणीके कर्मको उससे हल्का और मनके कर्मको कोई महत्व ही नहीं देते। लेकिन जिस व्यक्तिको सम्यक् सम्बोधि प्राप्त होती है, जिसने अनुभूतियोंके स्तर पर कुदरतके कानूनको समझा वह जान लेता है कि न शरीरका कर्म फल देता है, न वाणी का कर्म। मनका कर्म ही फल देता है। शरीर और वाणीके कर्म तो मनके कर्म के ही बाह्य प्रक्षेपण हैं, बाह्य प्रकटीकरण हैं। हर कर्म पहले मनमें शुरू होता है। फिर बढ़ते-बढ़ते तीव्र होगा तो वाणी पर उतर आयेगा। और अधिक तीव्र होगा तो शरीर पर उतर आयेगा। जो शरीर या वाणीका दुष्कर्म है वह मनके दुष्कर्म की ही संतान है। इसी प्रकार जो शरीर या वाणीका सत्कर्म है वह भी मनके सत्कर्म की ही संतान है। यह कुदरतका कानून किसीके उपदेशसे नहीं मान लेना है। किसी पुस्तकमें लिखा है इसलिए नहीं मान लेना है। अनुभूतियोंसे जानकर मानना है कि जैसी चित्तकी चेतना होती है, वैसा ही फल आता है।

ये सारी बातें अनुभूतियोंमें उतरेंगी तो कुदरतके कानूनको ठीकसे समझेंगे और तब अपने चित्त पर पहरा लगायेंगे। जो व्यक्ति अपने चित्तकी चेतना पर पहरा लगाने लगा उसको अपनी वाणी पर, शरीर पर पहरा लगानेकी आवश्यकता नहीं। यदि चित्तकी चेतना सुधरी हुई है तो वाणीसे, शरीरसे जो कर्म होंगे कल्याणकारी ही होंगे।

साधना आरंभ करते-करते हमने अपने शरीर और चित्त स्कंधके बारेमें कुछ-कुछ सच्चाइयोंको अनुभूतिके सहारे देखा था। सांसको देखते-देखते भी चित्तकी बात थोड़ी समझमें आने लगी थी। अब कायाको देखते-देखते, कायाकी संवेदनाको देखते-देखते चित्त और चित्त-वृत्तियोंकी बात और अधिक समझमें आने लगेगी। यह समझने लगेंगे कि यह मन या चित्त क्या है? इसकी चेतना क्या है? कैसे काम करती है?

चित्तकी चेतनाके चार मोटे-मोटे स्तम्भ, चार मोटे-मोटे हिस्से हैं। उन दिनोंकी भाषामें चित्तके पहले खण्डको विज्ञान, दूसरेको संज्ञा, तीसरेको वेदना और चौथे खण्डको संस्कार कहा गया।

उन दिनों विज्ञानका अर्थ था केवल जानना। अंग्रेजीमें अनुवाद करें तो इसे (CONSCIOUSNESS) कह सकते हैं। ये जो आखें हैं, नाक है, जीभ है, कान हैं, त्वचा है, ये इंद्रियाँ अपने आपमें बिल्कुल निर्जीव हैं। जब तक चेतनाका यह विज्ञान खण्ड इनके साथ नहीं लगता, तब तक ये काम नहीं कर सकतीं। इनके साथ विज्ञान खंडके जुड़ते ही जानकारी होती है किसी वस्तुकी, पदार्थकी, गंधकी, रसकी, शब्द आदिकी। बस केवल जानकारी होती है। जैसे ही जानकारी हुई, चेतनाका दूसरा खण्ड संज्ञा उत्पन्न होता है जिसका काम पहचाननेका है। यह पहचान अब तकके अनुभवोंके आधार पर, याददास्तके आधार पर होती है। पहचान होती है तो मूल्यांकन होता है। शब्द आए तो पहचाना-- ये प्रशंसाके हैं, ये गालीके हैं! जैसे ही पहचाना और मूल्यांकन कर लिया, चेतनाका तीसरा खंड उत्पन्न होता है जिसे वेदना कहा गया। वेदना अर्थात संवेदना-- सुखद भी होती है, दुःखद भी। जैसे ही सुखद या दुखद संवेदना होती है तुरन्त उसके प्रति प्रतिक्रिया होती है जिसे संस्कार कहा गया। यह चेतनाका चौथा खंड है।

सुखद संवेदना हुई। प्रिय लगी। उसके प्रति राग जागा। दुःखद संवेदना हुई। अप्रिय लगी। उसके प्रति द्वेष जागा। आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा और मन ये जो हमारी छः इंद्रियाँ हैं, इन पर ज्योंही संबंधित विषय टकराते हैं त्योंही त्वरित गतिसे जानने, पहचानने, मूल्यांकन करने, संवेदनशील होने और संस्कार बनानेका कार्य होता है। सदैव यही करते रहते हैं-- रागके संस्कार बनाते हैं, द्वेषके संस्कार बनाते हैं। इसी आदतके बाहर निकलना है।

ठीक तरहसे समझ लेना चाहिए कि कर्म-संस्कारके बीज कहाँ बनते हैं, कैसे बनते हैं? चित्तका पहला हिस्सा "विज्ञान" जो जाननेका काम करता है, वह कर्मका बीज नहीं बनता। इसी प्रकार चित्तका दूसरा हिस्सा "संज्ञा" जो पहचाननेका काम करता है, वह भी बीज नहीं बनता। चित्तका तीसरा हिस्सा "वेदना" भी बीज नहीं बनता। चित्तका चौथा हिस्सा "संस्कार" जो प्रतिक्रिया करता है वही बीज बनता है। कोई भी संपर्क चाहे आँख से हो, नाकसे हो, कानसे हो, जीभसे हो, त्वचासे हो अथवा मनसे हो; उसका प्रभाव शरीर पर होगा ही। और तब प्रतिक्रिया होगी, संस्कार बनेगा। यह संस्कार शरीरकी संवेदनाके आधार पर ही बनेगा।

जब संवेदनाको देखना आ जायेगा तो उसके प्रति न राग पैदा करेंगे, न द्वेष पैदा करेंगे, न मोह पैदा करेंगे। केवल द्रष्टाभावसे उसे देखेंगे। संवेदना सुखद हो या दुःखद, वह नश्वर है, भंगुर है। उसे द्रष्टाभावसे देखना है। घंटे भरकी साधनामें एक क्षण भी ऐसा आया तो अभ्यास करते-करते वही एक क्षण अनेक क्षण बन जायेंगे। अनेक सेकेण्ड बन जायेंगे, अनेक मिनट बन जायेंगे। ऐसी स्थिति भी आयेगी ही, जबकि जो कुछ हो रहा है उसको जानेंगे और जानकर प्रतिक्रिया नहीं करेंगे। राग नहीं पैदा करेंगे, द्वेष नहीं पैदा करेंगे। यूँ पलट जायेगा स्वभाव राग और द्वेषके कर्म बाँधनेका।

सिरसे पांव तक सारे शरीरमें चक्कर लगाते रहना और जहाँ-जहाँ सुखद या दुखद जो भी संवेदना हो रही है उसे जानकर निर्लिप्त, तटस्थ रह जाना है। जो कुछ हो रहा है उसे भोगें नहीं, मात्र देखें। जितना-जितना द्रष्टाभाव स्पष्ट होता चला जायेगा, उतना-उतना पुराना भोक्ताभाव का स्वभाव, राग रंजित द्वेष-दूषित और मोह-विमूढित रहनेका स्वभाव टूटता चला जायेगा। और वीत रागता, वीत-द्वेषता और वीत-मोहता दृढ़ होती चली जायेगी। प्रज्ञा पुष्ट होगी। जहाँ प्रज्ञा पुष्ट होगी याने प्रज्ञामें स्थित होंगे, वहाँ अनासक्त होंगे ही। जीवन-मुक्त होंगे ही।

(पू. गुरुदेवके प्रवचनका श्री रामसिंह द्वारा संक्षिप्तिकरण)

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

इगतपुरी में स्वयं-शिविर

स्वयं-शि. क्र. १००	६-५-८२ से	१७-५-८२	तक
,, १०२	१७-५-८२ ,,	२८-५-८२	,,
,, १०३	२८-५-८२ ,,	८-६-८२	,,

संपर्क : व्यवस्थापक, वि. वि. वि; धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी-७६.

साधिका ज्योत्सनाका देहान्त

श्री. रसिकभाईने १९७५ में नागपुरमें विपश्यना सीखी और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती ज्योत्सनाने दिसम्बर १९८० में इगतपुरीमें। अगस्त १९७८ में डाक्टरोंने हसे कैंसरकी रोगिणी घोषित किया। पतिके साथ अमेरिकामें रहते हुए दवा कराती रहीं परन्तु गत ३० जनवरी १९८२ को बीमारीने वहाँ अस्पतालमें अन्ततः प्राण लेकर ही छोड़ा।

मृत्युके एक घंटे पूर्व रसिकभाईसे मिलते समय वह बिल्कुल चेतनामय प्रसन्न मन थी और मृत्युके समयकी रिपोर्ट है कि शांतिपूर्वक देह छोड़ा। मुँह पर मुस्कान थी।

मृत्युके २९ घंटे पश्चात लिए गए छाया-चित्रमें भी चेहरेकी शांति और सौम्यता दर्शनीय है। निरन्तर अभ्यास करनेवाली युवा ज्योत्सनाकी धर्म-चेतना जीवनके अंतिम क्षण तक जाग्रत रही। परिणाम स्वरुप समतामय शांत चित्तसे शरीर छोड़नेका यह ज्वलन्त प्रमाण है। गत वर्ष गोसेन (मेसाचुसैट्स-अमेरिका) के शिविरके दौरान भी वह पू. गुरुजीसे मिलने आयी थीं।

भावी कार्यक्रम

शिविर क्रमांक २११ ✉ **इगतपुरी** – विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३ (नासिक) फोन नं. इगतपुरी–७६
दि. २५–४–८२ से ६–५–८२ तक (हिंदी) ✉ **संपर्क** : व्यवस्थापक, ,, ,, ,, ,, ,,

शिविर क्रमांक २१२ ⊠ **काठमांडू (नेपाल)**
दि. ९–५–८२ से २०–५–८२ तक (हिंदी)
⊠ **संपर्क** : श्री मणिहर्ष ज्योति, ज्योति भवन, कांति पथ, पो. बाक्स नं. १३३, काठमांडू (नेपाल)
फोन–आफिस : ११४९०/१४९०२/१४३२७, घर – ११२९०, तार–हिमालआयरन, काठमांडू.

सामूहिक साधनाएँ

१) बम्बई

समय : प्रतिदिन सुबह ६ से ७ बजे तक तथा प्रत्येक रविवार को सुबह ६ से ७ एवं ९ से १० बजे तक।

स्थान : "ध्यान कक्ष"

श्री. वर्धमान स्था. जैन श्रा. संघ उपाश्रय,
आयंबीलका नया मकान, २ तल, हींगवाला लेन,
घाटकोपर (पूर्व), बम्बई–७७.

२) कलकत्ता

समय : प्रत्येक शनिवार, सायं. ३–३० से ५–०० बजे तक।

स्थान : "कामायनी"
नं. १, लोअर सर्कुलर रोड,,
(लार्ड सिन्हा रोड क्रासिंग) कलकत्ता–२०

३) नागपुर

समय : प्रत्येक रविवार, प्रातः ८–३० से ९–३० बजे तक।

स्थान : "रचना अपार्टमेंट्स"
ब्लाक नं. ८, मश्रुवाला मार्ग, शिवाजी नगर, नागपुर

सभी समीपस्थ साधक/साधिकाओंको उपलब्ध सुविधाका लाभ उठाना चाहिए।

एक शुभेच्छु की मंगल कामनाओं सहित

↓

दूहा धरम रा

मन ही दुरजन, मन सुजन, मन बैरी, मन मीत।
मन सुधरया सै सुधरसी, कर मन परम पुनीत॥
मन की मिटी न बासना, मन का मिट्या न खोड़।
कुण बिरमाजी तारसी? झूठी आसा छोड़॥
मन की मिटज्या बासना, मन का मिटज्या खोड़।
तो तर ज्यावै आप ही, आस परायी छोड़॥
गंगा जमना सुरसती, सील समाधी ग्यान।
तीनां रो संगम हुयां, प्रगटै पद निरबान॥
पल पल पल प्रग्या जगै, र वै जागतो होस।
दूर राग रा रोग हुवै, दूर द्वेस का दोस॥
बारै सुख नै खोजतां, भटक्यो तीनू लोक।
अंतर मँह डुबकी लगी, निरमल हुयो निसोक॥

दोहे धर्म के

मन के कर्म सुधार ले, मन ही प्रमुख प्रधान।
कायिक वाचिक कर्म तो, मन की ही संतान॥
जैसी चित की चेतना, वैसा ही फल होय।
दुर्मन का फल दुखद ही, सुखद सुमन का होय॥
उलझे मन की गांठ में, दुखी हुए सब लोग।
मन की गांठें सुलझती, विपश्यना के योग॥
प्रज्ञा शील समाधि की, बहे त्रिवेणी धार।
डुबकी मारे सो तिरे, हो दुख सागर पार॥
ज्यों ज्यों अन्तरजगत में, प्रज्ञा जगती जाय।
काया वाणी चित्त के, कर्म सुधरते जाँय॥
देखो अपने आपको, समझो अपना आप।
अपने को जाने बिना, मिटे न भव संताप॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२००७. टेलिफोन : ८८२५१. ●
पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. ५००/–, चौथाई पृष्ठ रु. २५०/– ● वार्षिक शुल्क रु. ५/–, आजीवन शुल्क रु. ५१/–

विपश्यना"

पो. रजि. नं (M) NS (C) 36

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

प्रषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To